साहित्य संहिता
Available at http://www.sahityasamhita.org/
ISSN- 2454-2695
Volume 02 Issue 02
February 2016

केदारनाथ सिंह और उनकी काव्य भाषा

नवीन

स्नातकोत्तर विभाग

किरोड़ीमज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

E-mail: naveenravit0007@gmail.com

शोध संक्षेप–

केदारनाथ सिंह हिंदी के समकालीन कवियों में सबसे अलग ढंग के वरिष्ठ कवि हैं वे अज्ञेय द्वारा संपादित तीसरा सप्तक के भी कवि रहे। लेकिन आज स्वयं के लेखन तजुर्बे की विशिष्टता ने उन्हें एक स्वतंत्र और विशेष पहचान दी है। साठोत्तरी कविता की सपाटबयानी का भी उन पर प्रभाव रहा। लेकिन वो विशेष अर्थ में सपाटबयानी और साठोतरी प्रभाव वाले कवि इस अर्थ में हैं कि उन्होंने भी लगभग उसी साठ के दशक के आसपास कविता के नए चलन की नींव रखी। केदारनाथ जी भी साठ के दशक के उन कवियों में से एक है जिन्होंने कविता के अपने ढंग से कहने के अर्थ में लिया। साठोत्तरी दशक के ऐसे समकालीन कवि की भाषायी क्षमता, उसकी रचनात्मकता पर विचार किया जा सकता है।

प्रस्तावना–

आमतौर पर प्रत्येक कवि की भाषा अपने विशिष्ट ढंग की होती है। उसके अर्थ प्रकट करने की शक्ति के स्तर में भी इसी ढंग का प्रभाव रहता है। साठोतरी हिंदी कविता में 'धुमिल' और केदारनाथ सिंह जी के आधार पर कविता कहने और शब्दों को रखने के ढंग को समझा जा सकता है। जिस तरह 'धुमिल' ने कविता कहने का एक अलग मार्ग प्रसस्त किया। ठीक उसी रूप में केदारनाथ जी ने भी कहने और शब्द प्रयोग की विचित्रता के आधार पर हिंदी कविता को एक नया स्वरूप दिया। लेकिन वो

भाषा के प्रति भी अपने कहने के लहजे और ढंग अनुरूप सचेत रहे हैं इस अर्थ में उन्हें भाषा के सचेत कवि की संज्ञा दी जा सकती है। भाषा के महत्व को केदारनाथ जी ने अपने ही शब्दों में व्यक्त किया है–'भाषा का सवाल एक बड़ा सवाल है और यदि मैं कहुं तो एक कवि के लिए वह जीवन–मरण का सवाल है और यदि मैं कहूं तो एक कवि के लिए वह जीवन मरण का सवाल है मैं भाषा को लोगों की जबान पर से लाने की कोशिश करता हूं साथ ही यह भी कोशिश करता हूं कि हिंदी का जो अपना मिजाज है उससे छेड़छाड़ न की जाए।[1]

केदारनाथ जी ने भाषायी विश्वसनीयता को बचाएं रखते हुए, स्वयं के ढंग पर अपने शिल्प का विकास किया है। इस रूप में वो अपने ही ढंग के, अपने ही प्रतीकों के कवि हैं कविता के अपने निजी ढंग पर मुक्तिबोध ने कहा था। 'अपने स्वयं के शिल्प का विकास वही कवि कर सकता है, जिसके पास अपने निज का कोई ऐसा मौलिक विशेष ही जो यह जानता हो कि उसकी अभिव्यक्ति उसी के मनस्तत्वों के आकार की, उन्ही मनस्तत्वों के रंग की, उन्हीं के स्पर्श की और गंध की हो।'[2]

केदारजी के काव्य में ये सभी खुबियां उचित अनुपात में मौजुद मिलती हैं। केदारनाथ सिंह जी को शिल्प की बड़ी विशेषता ये है कि उन्होंने इसे स्वयं के अनुभव जगत के अनुसंधान से ईजाद किया है। अज्ञेय जी के मत अनुरूप ही केदार जी भी शब्द के महत्व को स्वीकार करते हैं शब्दों की प्रयोगशीलता और उनसे अर्थ निकलवाने की शक्ति को वो पहचानते हैं। केदार जी 'ठण्ड से नहीं मरते शब्द' कविता के माध्यम से शब्द की प्रयोगधर्मिता को दर्ज भी करते हैं–'ठंड से नहीं मरते शब्द/ वे मर जाते हैं साहस की कमी से'

केदार जी की भाषा में एक–एक शब्द जुड़कर नयी संरचना बनाता जाता है जो स्वाभाविकता के स्वभाव को नहीं बिगड़ने देता। उनकी भाषा में स्थानीयता सी सहजता है। कृत्रिमता का दूर तक कोई व्यापार नहीं। केदार जी की कविता पंक्ति दर पंक्ति सोचने को आतुर करती है वह पाठक के मस्तिष्क की उर्वरता की चाहत रखती है। यथा–'चावल जरूरी है। जरूरी है आटा दाल नमक पुदीना/पर क्यों न ऐसा हो कि

ISSN- 2454-2695
Volume 02 Issue 0
February 2016

आज शाम/हम सीधे वहीं पहुंचे/एकदम वहीं/जहां चावल/दाना बनने से पहले/सुगंध की पीड़ा से छटपटा रहा है।'[3]

केदार जी की छंदबद्ध कविताओं में लयात्मकता का गुण प्रभाव बढ़ाता है वहीं मुक्त छंदों वाली कविता में शब्द पर प्रभाव का भार आ जाता है। जो भलिभांति इसे बनाएं रखते हैं। डा. नामवर सिंह ने इनके शब्द प्रयोग की सराहना करते हुए कहा है कि 'सुघड़ शब्द–योजना उनकी विशिष्टता है। ऐसी शिल्प सिद्धि नए कवियों में कम ही प्राप्त होती है। एक हद तक परपंरागत रूप–विधि का अनुशासन मानते हुए भी केदार ने नए रूप प्रयोग का प्रयत्न किया है।'[4]

कुछ भिन्न शब्दों में वो कहते हैं 'केदार उन दो–तीन कवियों में हैं, जिन्होंने नई कविता को चलने योग्य नए शब्द दिए हैं और जिन्हें सचमुच ही समकालीनों ने अपना लिया और अपनी पीढ़ी को शब्द देना मामूली बात नहीं है।'[5]

'अकाल में सारस' में संकलित प्रथम कविता 'मातृभाषा' में केदार जी ने स्थानीय भाषा और स्थानीय लहजे की आत्मीयता के महत्व को सिद्ध किया है। क्योंकि अपने उस लहजे में कहने की एक विशिष्ट शक्ति होती है। जोकि किसी अनुकरण की भाषा में नहीं हो सकती। केदार जी के काव्य में स्थानीयता की आत्मा की सिद्धि हुई है। केदार जी की 'बनारस' कविता में स्थानीयता की सच्चाई अभिव्यक्त हुई है।

केदार जी की कविता शब्दों की विशिष्टता का अखाड़ा स्वरूप है। जिसतें हर दांव सफलता में गुणात्मक वृद्धि कर देता है। यही कारण है 'बाघ' कविता में कहीं भी शब्दों की बिसात नहीं है। बस केवल जरूरत के शब्दों में कविता कही गई है। उनके एक एक शब्द में व्यंजकता का गुण मौजूद दिखता है। उनके अर्थ की गंभीरता भी इसी कारण कुछ–कुछ अदृश्य असीम सी हो जाती है। 'बाघ' कविता में कहीं भी शब्दों की बिसात नहीं है बस केवल जरूरत के शब्दों में कविता कही गई है। उनके एक एक शब्द में व्यंजकता का गुण मौजूद दिखता है। उनके अर्थ की गंभीरता भी इसी कारण कुछ कुछ अदृश्य असीम सी हो जाती है। 'बाघ' कविता से 'वे चली जा रही थीं/स्वाद

ISSN- 2454-2695
Volume 02 Issue 0
February 2016

और नींद से लदी बैलगाड़ियां ... वे हमेशा इसी तरह जाती थी। बस्ती से शहर की ओर। कुछ न कुछ ढोती हुई।[5]

'बाद्य' कविता की भाषा की एक महत्वपूर्ण बात इसमें मौजूद बोलचाल का लहजा भी है। यही लहजा उनकी कविताओं की बनावट के केंद्र में है। बोलचाल के लहजे से इनकी कविता पाठक को बोझिल नहीं होने देती। पाठक एक वार्तालाप सी रूचि के रूप में केदार जी के काव्य की ग्रहण करता है।

केदार जी काव्य भाषा पर परमानंद श्रीवास्तव लिखते हैं–'कविता जितनी कथात्मक है, उतनी ही नाटकीय। भाषा के ऐंद्रियता विस्मयप्रद है। रोएंदार भाषा और क्या होती है?'[6]

'टालस्टॉय और साइकिल' काव्य संग्रह में केदार जी की भाषा अधिक परिपक्वता और अधिक सूझ–बूझ से रची हुई सी मालूम होती है। शीर्षक अनुरूप ही संग्रह की भाषा पर भी वैश्विक प्रभाव प्रकट हुआ है। इसी काव्य संग्रह पर कुवंर नारायण जी ने लिखा है–'पूरी कविता सहज बिंबों, सहज स्थितियों, परिचित वस्तुओं और एक विख्यात व्यक्तित्व से निर्मित है। भाषाई स्तर पर कहीं कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं होती है। किसी भी भाषा में इस कविता का अनुवाद आसानी से किया जा सकता है। क्योंकि शब्दों और मुहावरों के मामलों में यह कविता हिंदी भाषा की अंदरूनी जटिलताओं और किताबीपन से अपने को दूर रखते हुए रोजमर्रा की इस्तेमाली भाषा में अपने को व्यस्त करती है।'[7]

केदार जी के प्रथम संग्रह 'अभी बिल्कुल अभी' से लेकर 'सृष्टि पर पहरा' तक की कविताओं में लोकभाषा के, भोजपुरी के शब्दों का प्रयोग आम बात है। अरूण कमल के शब्दों में 'तो कोई शब्द, कोई ध्वनि कैसे इतना चित्रमय हो सकती है कैसे वह कई रूपाकारों और बिंबों की जाग्रत कर देती है यह केदार जी की कविता से ही जाना जा सकता है 'केदार जी की भाषा में मुहावरें, लोकोक्तियों, तत्सम, तद्भव शब्दों का प्रयोग मिलता है। इसके साथ ही उनके द्वारा निर्मित अपने मौलिक बिंब और प्रतीक अधिक हैं

जिनके बिना कविता को खोलना कठिन है। हां, कुछ बिबों को समझने के पश्चात कविता को पूर्ण रूप से अर्थ देना सरल भी है। कुछ मुहावरे—बिजली गिरना, गुस्सा पीना।

अनुप्रास, मानवीकरण, विरोधभाषा, उपमा का प्रयोग काव्य में सहज रूप से संभव हुआ है। कोई अतिरिक्त प्रयास अंलकारों को लेकर नहीं दिखता।

'ये काले—काले अक्षर/ भूरे भूरे अक्षर/ किसने बनाए।'[8]

केदार जी केवल काव्य की स्थितियों के प्रति ही समर्पित नहीं रहते हैं वो इससे अध्कि उसके लिए एक नए खांचे और रचनात्मक सम्पन्न सहज शब्दों की खोज भी करते हैं। ये रचनात्मक प्रक्रिया उनकी हर कविता में दिखाई पड़ जाती है। केदार जी की कविता भाषायी नवीन बिंब संसार का शब्दकोश सा जान पड़ती हैं। किसी सामान्य पाठक के लिए उनकी कुछ कविताएं शमशेर की भांति जटिल सी जान पड़ती हैं। केदार जी की कविताओं में ये जटिलता भाषायी शब्दों के कारण नहीं, बल्कि सामान्य शब्दों से बने नवीन बिंब और प्रतीकों के कारण आयी है।

निष्कर्षत—

हम कह सकते है कि केदार जी अपने नवीन सांचे के, अपने ढंग के कवि हैं जिन्होंने भाषायी विश्वसनीयता को जिम्मेदारी मानकर बनाएं रखा है। उनके लिए काव्य में केवल स्थितियां, भावनाएं सब कुछ नहीं है बल्कि अज्ञेय अनुसार कहने के ढंग शब्द प्रयोग के ढंग, नवीन बिंब शक्ति, नवीन प्रतीक योजना के कारण स्मरणीय रहेंगे। केदारजी की काव्य भाषा अनुशासन संचालित भाषा है। गहरे अर्थ भरी भाषा है। जिसकी ताकत शब्द है। शब्द उनके लिए कोई निश्चित क्रांति नहीं, बस एक संभावना जिसे काव्य में उन्होंने प्रकट किया है।

ISSN- 2454-2695
Volume 02 Issue 0
February 2016

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. मेरे साक्षात्कार–केदारनाथ सिंह, किताबघर प्रकाशन, 4855–56/24 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली संस्करण 2008, पृ. 116
2. नई कविता का आत्मसंघर्ष और अन्य निबंध–मुक्तिबोध, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर 1964, पृ. 61
3. अंकाल में सारस'–केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, पृ. 13
4. कविता के नए प्रतिमान–डॉ. नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 11–12
5. बाद्य–केदारनाथ सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 41
6. मिट्टी की रोशनी– सं. अनिल त्रिपाठी, शिल्पायन प्रकाशन, पृ. 12
7. वहीं, पृ. 17
8. अकाल में सारस, केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 12